कालिदास के साहित्य में सामाजिक समरसता

शोधालेख सारांश

समरसता भारतीय संस्कृति की आत्मा मानी जाती है। हमारी संस्कृति तो ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' की संस्कृति रही है, जिसमें एक समाज या एक राष्ट्र की ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के सुखी और निरोग रहने की कामना की गई है। हमारे ऋषियों–मुनियों ने तो सम्पूर्ण विश्व को एक कुटुम्ब के रूप में स्वीकार किया है। अतः प्राचीनकाल से ही सामाजिक समरसता हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। सामाजिक समरसता के अनेक प्रतिमान हो सकते हैं। यथा– जातिगत अस्पृश्यता, आर्थिक समानता, समान दण्डनीति, सर्वजन हिताय–सर्वजन सुखायपरक नीतियों का निर्माण, सर्वकल्याण की भावना, सबका साथ–सबका विकास, रोजगार के समान अवसर, राजा या नेता के द्वारा सर्व समाज का उत्थान, विनयशीलता, त्याग एवं दया आदि। कालिदास के साहित्य में समरसता को हम इन्हीं रूपों में स्वीकार कर सकते हैं। यद्यपि उनके साहित्य में पात्र उच्च वर्ग के रहे हैं लेकिन उन पात्रों ने कभी भी समाज या समाज के लोगों में किसी प्रकार का भेद–भाव नहीं किया। वे समाज और राष्ट्र विषयक समरसता के विषय में भलि–भाँति विचार करते हैं। कालिदास ने पुरुरवा, दुष्यन्त और भरत से लेकर दिलीप और उसके परवर्ती वंशज राजाओं तक और उससे भी परवर्ती अग्निमित्र तक के समाज और राष्ट्र की परिकल्पना प्रस्तुत की है। इसमें कहीं भी राष्ट्र या समाज की आधुनिक संकीर्ण अवधारणा नहीं रही। हमारा राष्ट्र विषयक चिन्तन तो समग्र विश्व को एक राष्ट्र मानने वाला है।

मुख्य शब्द

कालिदास, सामाजिक समरसता, भारतीय संस्कृति, समाज, दान, समानता, राजा– प्रजा, आदि।

भूमिका :

मानवीय संस्कृति का प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष रूप पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थ चतुष्टय के प्रवर्तन के लिए समाज में एक समुचित वातावरण एवं समरसता की आवश्यकता होती है। एक आदर्श समाज का निर्माण तभी सम्भव है, जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक अभ्युदय के लिए व्यक्तिगत लाभ का त्याग करे तथा सामाजिक समरसता का भाव रखे। महाभारत के आदिपर्व में कहा गया है–

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।[1]

समाज के सुव्यवस्थित संघटन के लिए उत्तरदायित्व चिरकाल से ही आचार्यों एवं राजा का ही रहा है। आचार्य समाज की सुदृढ़ व्यवस्था के लिए योजनाएं बनाते आये हैं और राजा उन योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए सूत्रधार रहा है। इस प्रकार समाज के बृहद् रूप राष्ट्र की सुदृढ़ व्यवस्था बनाने में ब्रह्म (ज्ञान) तथा क्षत्र (बल) दोनों का समान योगदान है। अथर्ववेद कहता है– **ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।**[2] अर्थात् राजा ब्रह्मचर्य तप से ही राष्ट्र की रक्षा करता है। राजा के लिए प्रजा का हित ही सर्वोपरि है, यही चिन्तन राजत्त्व की गरिमा की प्रतिष्ठा है। कौटिल्य के शब्दों में–

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।।[3]

यहां प्रजा का तात्पर्य सभी वर्गों के व्यक्तियों से है अर्थात् सभी वर्गों को राजा द्वारा समान मानना तथा सभी के हित की कामना करना सामाजिक समरसता का प्रतीक ही है। हमारे यहां तो ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' की संस्कृति रही है, जिसमें एक समाज या एक राष्ट्र की ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के सुखी और निरोग रहने की कामना की गई है। हमारे ऋषियों–मुनियों ने तो सम्पूर्ण विश्व को एक कुटुम्ब के रूप में स्वीकार किया है। अतः प्राचीनकाल से ही सामाजिक समरसता हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रही है।

कालिदास के साहित्य में सामाजिक समरसता विषयक चिन्तन :

सामाजिक समरसता के अनेक प्रतिमान हो सकते हैं। यथा– जातिगत अस्पृश्यता, आर्थिक समानता, समान दण्डनीति, सर्वजन हिताय–सर्वजन सुखायपरक नीतियों का निर्माण, सर्वकल्याण की भावना, सबका साथ–सबका विकास, रोजगार के समान अवसर, राजा या नेता के द्वारा सर्व समाज का उत्थान, विनयशीलता, त्याग एवं दया आदि। कालिदास के साहित्य में समरसता को हम इसी रूप में स्वीकार कर सकते हैं कि भले उनके साहित्य में पात्र उच्च वर्ग के रहे हैं लेकिन उन पात्रों ने कभी भी समाज या समाज के लोगों में किसी प्रकार का भेद–भाव नहीं किया। वे समाज और राष्ट्र विषयक समरसता के विषय में भलि–भाँति विचार करते हैं। कालिदास ने पुरुरवा, दुष्यन्त और भरत से लेकर दिलीप और उसके परवर्ती वंशज राजाओं तक और उससे भी परवर्ती अग्निमित्र तक के समाज और

राष्ट्र की परिकल्पना प्रस्तुत की है। इसमें कहीं भी राष्ट्र या समाज की आधुनिक संकीर्ण अवधारणा नहीं रही। हमारा राष्ट्र विषयक चिन्तन तो समग्र विश्व को एक राष्ट्र मानने वाला है।

कालिदास के अनुसार राजा समस्त प्रजा का पिता है, क्योंकि वह स्वानुशासित दृढजीवन के संस्कार दे रहा है, अतः वह समाज की सुदृढ़ एक सूत्रता का उन्नायक भी है। कालिदास का कथन है–

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।[4]

किसी का भी सम्मान एवं अपमान व्यक्ति को सम्पूर्ण रूप से जानकर विवेक पूर्वक करना चाहिए, जो ऐसा नहीं करता, वह कालिदास की दृष्टि में मूर्ख है अर्थात् सामाजिक समरसता के विपरीत आचरण करने वाला है। इस संदर्भ में कुमारसम्भव में पार्वती की उक्ति है–

उवाच चैनं परमार्थतो हरं न वेत्सि नूनं यत एवमात्थ माम्।
अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्।।[5]

बार–बार मना करने के उपरान्त भी बटुक शिव की बुराई करना बन्द नहीं करता तो पार्वती कहती है कि बड़ों की निन्दा करने वाले और सुनने वाले दोनों पाप के भागी हैं–

निवार्यतामालि किमप्ययं बटुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं तो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्।।[6]

अपने से बड़ों का सम्मान हमारी संस्कृति रही है लेकिन यही तथ्य समरसता को भी प्रतिपादित करने वाला है क्योंकि निन्दा बड़ों की करो या छोटों की, इससे समाज में वैमनस्यता फैलती है और उससे समाज में समरसता के स्थान पर नीरसता उत्पन्न हो जाती है।

व्यक्ति को धनसंग्रह दान के लिए ही करना चाहिए। जो कुछ संचित किया, उसे वैसे ही दूसरों को दे देना चाहिए, जैसे बादल पानी इकट्ठा करता है, परन्तु दूसरों को देने के लिए। रघु के प्रसंग में कालिदास की उक्ति है–

स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम्।
आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव।।[7]

दान देने का तात्पर्य है– अपने से निम्नवर्ग को ऊँचा उठाने का प्रयास अर्थात् जो निर्धन एवं आर्थिक दृष्टि से कमजोर है, उसको समानता प्रदान करना और यदि समाज में सभी समान होंगे तो सामाजिक समरसता स्वतः ही उत्पन्न हो जायेगी। इसी दृष्टि से कालिदास कहते हैं कि श्रेष्ठ व्यक्तियों का धन विपत्ति में पड़े हुए लोगों के दुःखनिवारण के लिए ही है–

आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्।[8]

अपने आश्रित व्यक्ति का दुःख अपने ऊपर ले लो। कालिदास की सामाजिक समरसता का आदर्श हम यहां इसी रूप में देखते हैं, जब वह कहते हैं कि राजा को अपने सुख की चिन्ता नहीं करनी चाहिए, उसे निरन्तर प्रजाजनों के सुख के लिए ही चिन्तित रहना चाहिए और यदि प्रजा सुखी रहेगी, प्रजा की आवश्यकता का ध्यान राजा रखता है तो निश्चित रूप से समाज में समरसता का वातावरण तैयार होगा–

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्नापादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्।।[9]

कालिदास की दृष्टि में विनम्रता भी सामाजिक समरसता में अत्यधिक भूमिका निभा सकती है। विनम्रता अहं–भाव का नाश करती है तथा समाज में समता–भाव को उत्पन्न करती है। इस संदर्भ में कालिदास कहते हैं कि–

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमै–
नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।[10]

वृक्ष फल आने पर झुक जाते हैं। मेघ नवीन जल से पूर्ण होने पर अत्यधिक नीचे आ जाते हैं, सज्जन सम्पत्ति प्राप्त कर, विनयशील बनते हैं, परोपकारियों का यही स्वभाव है।

कालिदास ने समाज में समरसता के लिए निर्देशित करते हुए कहा कि 'श्री' और 'सरस्वती' का एक ही पुरुष में साथ होना कठिन है परन्तु सज्जनों के कल्याण के लिए वे दोनों एक होवें। दो विरोधी वस्तुओं को भी कालिदास ने एक होने की बात कही है, जिससे समाज में उत्पन्न भेद–भाव दूर हो सके और समरसता उत्पन्न हो सके–

परस्परविरोधिन्योरेकसंश्रयदुर्लभम्।
संगतं श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम्।।[11]

समाज का आदर्श स्वरूप तो यही है, जहां सभी जनों को विद्वानों की सुसंगति और निर्देशन प्राप्त हो। यद्यपि रूढ़िवादी होना कालिदास को स्वीकार नहीं है। परन्तु वह यह भी विचार करते हैं कि नवीनता की चकाचौंध कहीं दृष्टि को पथभ्रष्ट नहीं कर दे। अतः नवीनता और प्राचीनता में ग्राह्यत्व विवेकपूर्ण हो, तथा हमें सर्वदा बुद्धि का उपयोग करना चाहिए–

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।।[12]

रघुवंश के प्रारम्भ में ही कालिदास रघुवंशीय राजाओं का सामाजिक समरसता के उन्नायक के रूप में गुणगान करते हैं। इन राजाओं के गुणों से ही प्रेरित होकर कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य की रचना है–

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपिसन्।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः।।[13]

यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम्।।

त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्।।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।[14]

रघुवंशीय सभी राजा धर्म में सर्वदा निरत थे। लोगों को यथापराध दण्डित करते थे। याचकों की मनोभिलाषा पूर्ण करने वाले थे। नित्यनैमित्तिक कर्मानुष्ठान परायण थे। इन राजाओं की मान्यता थी कि संचित धन, त्याग और दान के लिए है न कि राजा के भोग–विलास के लिए। इनका जीवन आश्रमचतुष्टय एवं पुरुषार्थचतुष्टय पर आधारित था। इनका शैशव, यौवन तथा वार्धक्य क्रमशः विद्याप्राप्ति, विषयानाभिलाषा और मुनिवृत्ति के लिए था तथा जीवन के अन्तिम समय में ये योग के द्वारा अपना शरीर त्यागते थे। इस प्रकार धर्मार्थकाम की प्राप्ति कर, परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति इन्हें होती थी। उपर्युक्त गुणों के आधार पर रघुवंशी राजाओं ने समाज में समरसता उत्पन्न करने का ही कार्य करते हुए, सर्वकल्याण के लिए जीवन जीने का आदर्श प्रस्तुत किया है।

इन्दुमती स्वयम्वर के प्रसंग में कार्तवीर्य अर्जुन की शासन व्यवस्था के विषय में कालिदास कहते हैं कि उसके शासन में जब कोई भी व्यक्ति गलत कार्य करने की सोचता तो कार्तवीर्य सोचने मात्र से ही उसके सामने आकर खड़ा हो जाता। ऐसे शासन में अपराध कैसे सम्भव है और जहां अपराध ही नहीं होगा, वहां समरसता होगी ही–

अकार्यचिन्तासमकालमेव प्रादुर्भवंश्चापधरः पुरस्तात्।
अन्तः शरीरेष्वपियः प्रजानां प्रत्यादिदेशाविनयं विनेता।।[15]

समाज और राष्ट्र के लिए श्रीराम द्वारा किया गया त्याग तो अनुपम है। समाज और राष्ट्र को ध्यान में रखकर ही उन्होंने सीता का त्याग किया और एकपत्नीव्रत रखा। गर्भवती सीता की पवित्रता को जानते हुए भी प्रजारंजन के लिए अथवा लोकापवाद से बचने के लिए उन्होंने इतना बड़ा निर्णय लिया। यदि श्रीराम यह निर्णय नहीं लेते तो सम्भवतः प्रजा में विरोध के भाव उत्पन्न हो जाते तथा समाज में वैमनस्यता उत्पन्न हो सकती थी।

मेघदूतम् में कालिदास ने मेघ को प्रमुख पात्र बनाया है तथा उसमें अनेक मानवीय गुणों जैसे– सरलता, उदारता, स्नेह, दयालुता, परोपकारिता आदि का समावेश किया है। यक्ष जब मेघ द्वारा अपनी प्रेयसी को अल्कापुरी में जाकर संदेश देने के लिए कहता है और अल्कापुरी का मार्ग बताता है तो मेघ बिना किसी भेद–भाव के मार्ग में थके हुए पथिकों को अपनी ध्वनियों से शीघ्र अपनी प्रिया से मिलन के लिए प्रोत्साहित करता है।[16] खेतों में बरस कर किसानों को प्रसन्न करता है। विरहीजनों की दीन–दशा को देखकर तो मेघ फबक–फबक कर रोता है।[17] मेघ के ये सभी गुण सामाजिक समरसता के ही परिचायक है।

सारांश :

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम देख सकते हैं कि कालिदास ने अपने साहित्य में समाज के प्रति तत्कालीन राजाओं के क्या कर्तव्य थे, वे किस प्रकार अपने दायित्वों को पूर्ण करते हुए सामाजिक समरसता का परिचय देते थे। वे किसी एक समाज या वर्ण के विकास का चिन्तन नहीं करते थे अपितु सभी समुदायों का विकास एवं उनके हित का विचार करते थे। इस प्रकार कालिदास के साहित्य में सामाजिक समरसता परिपूर्ण रूप में व्याप्त है।

संदर्भ :

1. महाभारत, आदिपर्व, 115.36
2. अथर्ववेद, 11.5.17
3. अर्थशास्त्र, 1.9
4. रघुवंशम्, 1.24
5. कुमारसम्भवम्, 5.75
6. कुमारसम्भवम्, 5.83
7. रघुवंशम्, 4.86
8. मेघदूतम् (पूर्वमेघ), 53

9. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5.7

10. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5.12

11. विक्रमोर्वशीयम्, 5.24

12. मालविकाग्निमित्रम्, 1.2

13. रघुवंशम्, 1.9

14. रघुवंशम्, 1.6–8

15. रघुवंशम्, 6.39

16. मेघदूतम्, उत्तरमेघ, 36

17. मेघदूतम्, उत्तरमेघ, 30

संदर्भ ग्रन्थ–सूची :

1. अथर्ववेद, प्रकाशक – नाग पब्लिशर, दिल्ली।
2. अर्थशास्त्र, कौटिल्य, पण्डित कुलमणिमिश्र शर्मा, श्रीसदाशिव केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, पुरी, 1986।
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, कालिदास विरचित, प्रकाशक–महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा।
4. कुमारसम्भवम्, कालिदास विरचित, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
5. महाभारत, व्याख्याकार–चक्रवर्ती व्यास, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशनए नई दिल्ली, 1985
6. मालविकाग्निमित्रम्, प्रकाशक–चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
7. मेघदूतम् – कालिदास विरचित, संपा. आचार्य शेषराज शर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
8. रघुवंशम्, कालिदास विरचित, प्रकाशक–चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
9. विक्रमोर्वशीयम्, कालिदास विरचित, प्रकाशक–ग्लोबल विजन पब्लिशिंग हाउस. नई दिल्ली, 2004।

डॉ. सत्यनारायण भारद्वाज
सहायक आचार्य
प्राकृत–संस्कृत विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं